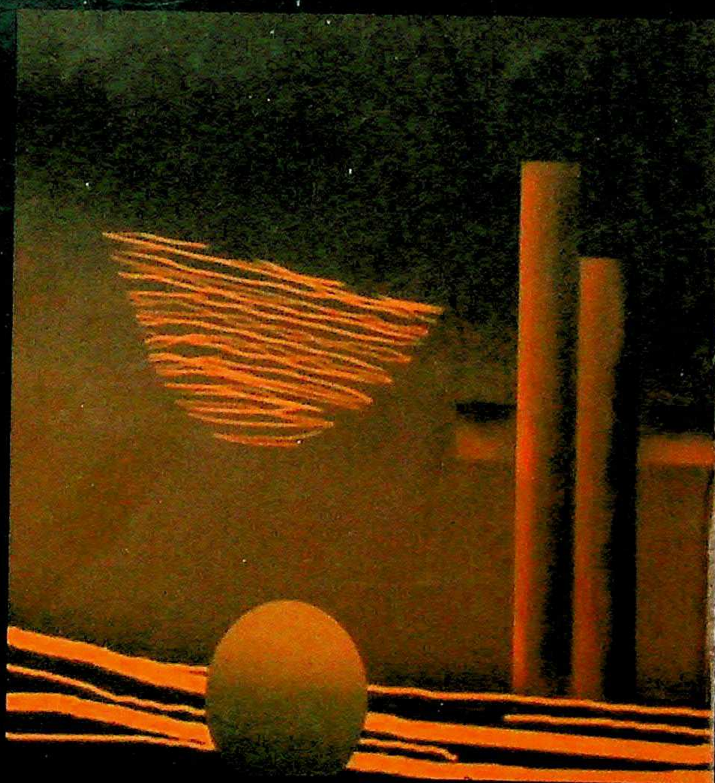
नए लोग, नई सोच

मेरी प्रिय कविताएँ

लीलाधर मंडलोई



मेरी प्रिय कविताएँ

लीलाधर मंडलोई

ज्योतिपर्व प्रकाशन
99, ज्ञान खंड-3 इंदिरापुरम, गाजियाबाद-201012

ISBN-978-93-82009-58-0

प्रकाशक :
ज्योतिपर्व प्रकाशन
ज्योतिपर्व मीडिया एंड पब्लिकेशन
99, ज्ञान खंड-3, इंदिरापुरम,
ग़ाज़ियाबाद-201012

प्रथम संस्करण :
2014

मूल्य : पेपरबैक : ₹ 129/-
हार्डबैक : ₹ 249/-

शब्द संयोजन :
रावत कम्प्यूटर्स, दिल्ली
9811649701

मुद्रक :
डी०जी० प्रिंटर, दिल्ली

MERI PRIYA KAVITAYEN
BY LILADHAR MANDLOI

भूमिका

मैं अपनी कविता की तरह
अधूरा हूँ
अंतिम पंक्तियों पर
बिखर गयी है स्याही
मैं अपना पूरा होना
खोजता रहता हूँ

दरअसल कविता में अधूरेपन के अहसास ने ही मुझे अब तक लिखने में ज़िंदा रखा है। मैं मानता हूँ जैसे हम अपने जीवन को अधूरेपन के साथ जीने को बाध्य हैं, वैसा ही कुछ कविता कि अन्य कलाओं में होता होगा। बाज़दफ़ा मुझे अपनी हर कविता अधूरी लगती है। मैं सिर्फ वस्तु की बात नहीं कर रहा। भाषा, शिल्प, संगीतात्मकता या लयात्मकता के साथ ही वाक्य रचना के संदर्भ में भी। हर बार पाठ के दौरान लगता है, कितना कुछ आने से छूट गया है। मैं छूटे हुए को अगली कविता में अबेरने की सोचता हूँ और उसे भूल जाता हूँ। यहाँ तक शब्दों के चयन याकि उन्हें वापरने में भी भूल होती है और पाठकों तक सही अर्थ न पहुँचने के डर से भर जाता हूँ। इसी डर में कहीं लिखा था मैंने–

शब्द वरदान हैं
यदि वापरने में हुई भूल
वे तबाही मचा सकते हैं

कह सकता हूँ मैं अपने तईं सतर्क होकर लिखने के बावजूद शायद एक डरा हुआ कवि हूँ। इसलिए अधूरा हूँ। कदाचित् मैं अधूरी कविताओं का कवि

होऊँ। लेकिन इतना जरूर कहना चाहूँगा कि मैं कविता को लेकर गहरे संकोच और संदेह से भरा हूँ। शायद इसीलिए लिख पाता हूँ।

(2)

अगर कविता में
न आये मेरी मातृभूमि
मैं कवि नहीं

मैं मानता हूँ कि हमें सात समंदर पार की उड़ान तब भरनी चाहिए, जब हम अपनी धती के यथार्थ को अपनी समझ भर जान लें। इस जानने में अपनी कविता की दीर्घ परंपरा और यात्रा भी शमिल है। अपने विगत के स्मरण में आगत का मानचित्र भी होता है। वह बाधित नहीं करता बल्कि रास्ता खोलता है। ओसिप मंदेलस्ताम तो इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं–'और मुझे कुछ नहीं चाहिए / पर मुझे प्यार अपनी निर्धन धरती से / क्योंकि इसके अलावा किसी और को / जानता नहीं।' यहां मैं धरती का सीमित पाठ नहीं इसमें भी असफल ही रहता आया हूँ। लेकिन मेरी असफलता ही मुझे और अधिक जानने के लिए प्रेरित करती है।

वास्तव में कविता का जहाँ अपना अधूरापन होता है तो उसकी असफलता भी। लेकिन मुझे कविता में अपनी असफलताओं से, सफलताओं की तुलना में, कहीं अधिक प्यार है, अधिक भरोसा।

(3)

हर कवि के पास नये और अनोखे अनुभव होते हैं जो काल की मुठभेड़ से उसकी काव्य पूँजी में तब्दील होते रहते हैं। मेरे पास भी कुछ हो सकते हैं, न सही अनोखे और नये लेकिन थोड़ा भिन्न तो ही सकते हैं। हर कवि का भिन्न परिवेश होता है। एक ही समय में रहते हुए भी काल भिन्न होता है। मेरी चिंता अनुभवों को लेकर उतनी अधिक नहीं जितनी कि उन्हें अर्थपूर्ण आयाम देने की होती है। ये आयाम, मैं सच के भीतर से खोजकर पाना चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि पाठक कहे अरे! यह कविता कितना झूठ बोल रही है। यह तभी होगा जब मेरी कविता में समाज के बड़े हिस्से की संवेदना का नक्शा बनेगा। वह धुँधला ही सही लेकिन धुँधली स्मृति की तरह तो हो और जिसे सबके कमोबेश अनुभव

की तरह पढ़ा जा सके। वह सिर्फ़ मेरा और मेरा अनुभव बनकर रह जाए, यह मुझे मंज़ूर नहीं। कहने का मतलब कि मेरे लिखे का एक सामाजिक आशय हो और उसका रूप आत्मीय हो जिसे पाठक अपने आत्म से जोड़ सके। मैं नहीं जानता कि मेरी कविता इस दृष्टि से खरी है या नहीं। शायद इसी जद्दोजहद के लगातार चलते किसी प्रसंग में मैंने लिखा था–'अगर मेरी कविता में दुक्ख है। और सबका नहीं। मेरे लिखे को आग लगे।' मैं सचमुच सोचता हूँ कि मुझमें अपने असमंजस से निकलकर अपनी उन कविताओं को जलाने की ताकत होनी चाहिए कोई सामाजिक आशय नहीं बनता।

(4)

मैं लिखता हूँ
उस भाषा में

जो मुझे जानती है

मेरे लिए कविता की भाषा एक बड़ा प्रश्न है। बचपन से मेरी स्मृति में जो भाषा है, जो मेरे लोग बोलते हैं। उस भाषा में वे अपने को अभिव्यक्त करते हैं तो उनकी अर्थ संप्रेषणीयता को जादू देखते बनता है। कई बार वो लेखकों से अधिक मौलिक होता है, अधिक कारगर। उनके बोलने में जो रवानी और संगीत होता है, वह क़ाबिलेगौर होता है। बोलचाल की भाषा में उनके मुहावरे अर्थ ऊर्जा से भरे होते हैं। उनकी भाषा में ध्वनियों का अनसुना सौंदर्य बहता है। वे नीरसता को परास्त करती हुई भाषा में बोलते हैं। वे पूरे मन से बोलते हैं। क्या मैं अपने कवि मन से बोलने की क्षमता धार पाया? मैं अपनी भाषा को अपने लोगों से, उनके सपनों सहित पाना चाहता हूँ। मैं भाषा को अपने विलास के लिए मनमाने ढंग से बरतने का सख्त विरोधी हूँ। कवि की भाषा, उसके लोगों की भाषा से बनना चाहिए। काश, मैं ऐसा कर पाऊँ। फिलवक़्त मैं इस यत्न में हूँ कि ऐसी भाषा पा सकूँ जिसमें बात करूँ तो लोग ठहरकर सुनना चाहें। मैं तो उस भाषा के बारे में भी सोचता हूँ जिसके माध्यम से प्रकृति बात करती है। उसकी कई बातें हमारी समझ में आती हैं। तो मैं उस भाषा के पीछे क्यूँ भागूँ जो किसी को समझ न आए। यह बहोत मुश्किल है लेकिन मुश्किलों को आसाँ करना भी तो

कवि का काम है। मैं नहीं कहता कि मैं ऐसा कर पाया। लेकिन मैं एक ईमानदार कोशिश में हूँ।

(5)

मैं अपनी कविताओं को सृष्टि में खोजता हूँ। सृष्टि जिसके दुख-सुखों का इतिहास है। जिसमें मनुष्य के अलावा भी इतना कुछ है जिसकी टोह भी लेना मुश्किल। यह सृष्टि जीवितों की ही नहीं मृतकों की भी है। जैसे दीखने वाली के अलावा जलमग्न सृष्टि भी है। जो दृश्य से अधिक अदृश्य है। इसी दुनिया में पाप-पुण्य अपराध और स्वर्ग-नरक हैं। इसमें महात्मा और शैतान हैं। गरीब-अमीर हैं। इसका अतीत और वर्तमान है तो भविष्य का निकलता रास्ता भी है। क्या मैं अपनी समस्त इंद्रियों के माध्यम से उसका थोड़ा ही सही, कविता के लायक हिस्सा पा सकता हूँ। मेरी अपनी सीमाओं में सही क्या मैं सृष्टि के एक छोटे से हिस्से के सच को अपनी भाषा में संभव कर सकता हूँ?

मैं कविता से अधिक सृष्टि की अमरता के लिए लिखना चाहता हूँ। मैं असफल और अधूरा रहकर भी लिखते रहना चाहता हूँ। मेरे पास और कोई चारा नहीं है।

मैं अपने पाठकों के साथ रहना और जीना चाहता हूँ। मैं उनके साथ, उनके सरोकारों को जानना चाहता हूँ। मैं उनकी भाषा के सौंदर्य को अपनी कविता की ताकत बनाना चाहता हूँ। मीर ने यही कहा था–"हर चंद सादा गो अस्त, अम्मा दर सादा गोई पुरकारी हो दारद" अर्थात् यद्यपि मीर सादा गो है पर उसकी सादगी में पुरकारी (सौंदर्य) पाई जाती है। अतः पाठकों से गुजारिश है, मुझे अपनाईयत और सीख दें। मेरे लिए दुआ करें कि मैं सादगी को पा सकूँ।

– लीलाधर मंडलोई

अनुक्रम

आग

मेरी मेज परे
टकराते हैं
शब्द से शब्द
एक चिंगारी उठती है
और कविता में आग की तरह
फैल जाती है

आग नहीं तो कविता नहीं

एक अबूझ बंदिश

गाँव भी तब उसे बमुश्किल शुमार किया जाता था
विस्थापितों की एक उभरती बस्ती थी जिसमें कुछ
घरनुमा-सी हो सकने वाली झुपड़ियाँ थीं जिन पर
नजीक के मुहार से यत्नपूर्वक काटकर जुटाई गई
लेंडी की हरी कच्च टहनियाँ थीं जो किसी जुगत बिछी थीं

उस पर देसी कबेलू से बनाई गई खपरैल छतों में
छूट गए बहुत-से सुराख थे जिनके खो जाने पर
हम अकसर उदास हो उठते थे
सुराखों से टपक पड़ती धूप में हमारे
अजब-ग़ज़ब खिलौने थे सर्वाधिक आधुनिक

इंद्रधनुष की आधी-अधूरी कलाकृतियाँ
जिन्हें हमने सुराखों से उतरते देखा था
काँच के फालतू टुकड़ों को धूप की सीध में किए
कई रहस्य हमने खेल-कूद में जान लिए थे

धूल जो हमारे सिरों पर उछल-कूद करती थी
सूरज को ढँकने का हौसला रखती है यह हमें
आसमान में अटती गंदगी से पता चला
हवाओं के करतब और रेखाओं का गणितीय अर्थ
इन्हीं खेलों ने हमें समझाया और
सृष्टि के बारे में अनेक सूचनाओं से नवाजा

खपरैल की जर्जर छत इस तरह सुसज्जित शिक्षा केंद्रों
के मुकाबले हमारी प्रारंभिक पाठशाला बनी
उन दिनों हमें बारिश का बेतरह इंतज़ार रहता
कई दिलचस्प खेल उसकी वजह से रुके रहते
यह बात घर में सख़्त नापसंद की जाती
परिवार के लिए यह सबसे कठिन मौसम होता

इस हद तक कि पिता भगवान को गरियाते
माँ जो बेहद धार्मिक विचारों की थी
भगवान की मर्जी मान बहुत पहले
प्लास्टिक की लंबी-बड़ी पन्नियाँ अबेरना शुरू कर देती
इस दौरान फटे-पुराने त्याज्य बोरों के दिन फिर आते
पिता बुड़बुड़ाते हुए दुकान के कोने में फेंक दिए
फटे पाल को थिगड़ें लगा सी लिया करते

पूरा कुनबा किसी युद्ध की तैयारी में जैसे पिल पड़ता
बरामदे में गायब हो चुकी पार ऊँची होने लगती
नजीक में ढंकी-मुंदी नालियों को गहराने की होड़ में
हम सब भाई-बहन टूट पड़ते
घर पर मंडराते आतंक और भय के बावजूद
बादलों के जमावड़ों में हमारी दिलचस्पी कम न होती
उनमें हमारे खिलौने छुपे थे जो
कई सूरतें लिए आसमान के मैदान में नमूदार होते
उनकी अठखेलियों से निकलते हमारे
नायक-खलनायक, गेंद-गुब्बारे और पुष्पक विमान

कोई शानदार लय और हैरतअंगेज गति जो
एक अबूझ बंदिश लिए हमारे भीतर उतरती
कहीं सुने गए मल्हार या बादलराग जैसा कुछ
जो हमारे लिए तब समझना कठिन होता
मंद-तेज़ गड़गड़ाहट, तड़क और नक्कारों के प्रभाव में

आरोह-अवरोह, सम-विषम या कुछ ऐसा जिसे
संगीत के लोग बेहतर समझ सकते थे
हमने थोड़ा कुछ बारिश से पकड़ना शुरू कर दिया था

कुछ ख़ास ध्वनियों की हमें तलाश रहती जिन्हें
वक़्त ज़रूरत पड़ने पर हम कंठ से निकाल सकते
या कि टीन के कनस्तर, थालियों और लोहे की मेजों पर
पकड़ आई तालों पर मटक या नाचकर
उन नकचढ़ों करे चिढ़ा सकते
हवा ऐसे मौसम में हमारी दोस्त हो जाती
दादी माँ की कहानियों में आए वातावरण को
पहचानने में वह हमारी भरपूर सहायता करती
खासकर कहानियों में जब कोई दुष्ट राक्षस आता
दादी माँ डरावनी ध्वनियों के सहारे उसके प्रवेश की
सूचना देकर हमारे सीख रहे ध्वनिपाठ को पुष्ट करती
ऐसा बहुत कुछ पार्श्व संगीत बारिश के मौसम से
हमने अपनी पाठशाला में सीख लिया था

पास-पड़ोस की वस्तुओं में उठती ध्वनियों का बोध
बर्तनों में टप-टप या कि टप-टपा-टप बूँदों का नाद
खपरैल पर नाचती-इठलाती कोई देसी बंदिश
पुरा-पड़ोस की छतों पर ओलों का तांडव
बहुत कुछ ऐसे संगीत रूप हमें मौसम ने पढाए

ध्वनियाँ जो गहरे हमारे अवचेतन में पैठ गई थीं
उनका ऊट-पटाँग प्रयोग हमें सुख देता
मसलन अंट-शंट ध्वनियाँ निकाल खिझाना
टीन की छतों पर कंकड़ फेंकना
कुओं में पत्थर या बाल्टी की डुब्ब सुनना

कब और कैसे के नासमझ प्रयोगों के चलते
बाज दफ़ा हम खूब पीटे जाते

पिता कोसते खुलेआम और माँ फटकारती
इन सबके बीच बारिश हर साल दे जाती
कुछ और ताल ज्ञान, नयी लय और कुछ संगीत पाठ
समझ में सब आया ऐसा दावा फिजूल
जितना कुछ सुना याकि सुनता हूँ
अत्याधिक, पारंपरिक कि प्रयोगधर्मी

टटोलकर मेल करता हूँ पीछे से
बहुत कुछ वैसा और ढेर कुछ बाहर
मैं उपलब्ध से बाहर में दौड़ना चाहता हूँ
मैं नौ महीने सुने हुए को गुनता हूँ
मैं गुने हुए के सच होने का इंतज़ार करता हूँ

पृथ्वी को अपना घर समझने वाले

गुज़र चुके दुख-सुखों का एक आईना है
धूल-धुँआ-धूप से भरा हुआ
जिसमें एक जईफ़ औरत मिलती है
कुछ न कुछ मेरे चेहरे से झाड़ती हुई
एक बुजुर्ग मिलता है
समय के सूखे पत्तों को बटोरता
जिसमें कोई आदिम गंध है
पूर्वजों की

वहाँ पानी के संस्मरण हैं
आँखों से बयां होते
और एक बच्ची है जो
मुझे आज से जोड़ती है
हालांकि हम यहाँ अब भी
आदिवासी बहोत
लेकिन जबरन दफ़्तर दाखिल

इस बदतमीज़ दुनिया में
जहाँ हम अँधेरे में बिस्तरा लगाते हैं
और नींद को झुलाते हैं
पड़ोसियों से मुँह चुराते हैं
और बद्दुआएं लेते हुए ज़माने की
कायम मुकाम रहते हैं अपने कौल पर

यहां अपरिचित अँधेरा हैं
और पैर बचाकर चलना लाजिमी
कि हमारी जड़ें यहाँ नहीं
न ही आकाश हमारा
बेलों, फूलों और पत्तियों से ढंकी
इमारतों के बाहर
आमदरफ़्त सड़क हमारी पहचान यहाँ
रास्ते निरपराध के ख़ून से रंगे हैं
और हठात् इल्जाम आस पास
यहाँ हठात ढंग से मुजरिम होने में
देर नहीं लगती
कि आपके तलुओं में खून के धब्बे आम बात
अब कोई नहीं माँ-बाप अगर
तो हठात् जेल में फेंके जा सकते हो

वैसे भी चेहरा हमारा इतना दयनीय
और इतना बेकलफ़
कि रेंगते हुए लगते हैं
अभिनय से बदल नहीं पाते
मुख-मुद्राएँ
और भले नागरिक बनने के फेर में
खोते जाते हैं अपनी आग
हम भूल चुके हैं सवाल करना
और अचंभे की तरह ज़िंदा हैं

यह और बात है कि ताक़त के किस्से हैं अब भी
और कोई शोक प्रस्ताव पारित नहीं हुआ
पसीना सूखा नहीं है
और स्वप्न देखने का जज़्बा है बाकी
दुश्मनों के नाम भी
लाल रौशनाई में अंकित हैं
और कोई कोशिश इन्हें मिटा नहीं सकती

निर्वासन के बावजूद
हम आत्म निर्वासित नहीं
पृथ्वी को अपना घर समझने वाले
असंख्य लोग हैं और बेआवाज़ नहीं
इनमें बोलता है मुल्क
और मुल्क को हराना
इतना आसान नहीं

खटखटे, पिंजरे और कोरियों के वंशज

उनके पूर्वज ने चुने खटखटे
लकड़ी के
फँसाये दोनों पैर और
कच्चे सूतों में चढ़ाकर
अपनी जिन्दगी
डाल दिये दोनों हाथ

वे बुनते रहे
धोतियाँ, साड़ियाँ, चादरें
और सुआपियाँ

बिना रूके चलाते रहे खटखटे
खट-खटा-खट-खट
और खाते रहे कोड़े
ठाकुरों के
सटाक-सटाक-सटाक

चिलचिलाता उनका खून
शोषित-असहाय
फैलकर रंगता रहा कपड़े
पीढ़ी दर पीढ़ी

कोरियों के वंशज-खानदानी
बुन रहे हैं, अब भी कपड़े

चलाते-चलाते खटखटा
खरीद लिया उन्होंने
पिंजरा लोहे का, ठीक वैसा
जैसा खटखटा था
लेकिन मज़बूत और टिकाऊ
विरासत के लिये

एकदम पहले की तरह
फँसे हैं उनके हाथ-पैर
और नंगे बदन
चल रहे हैं पिंजरे
खट-खटा-खट-खट

बहुत कुछ बदल गया है
दुनिया में
सिवाय इसके कि ठाकुर
अब भी बनवा रहे हैं कोड़े
नये-नये मज़बूत
उनके आदमी
पिला रहे हैं तेल कोड़ों को
कोड़े हुमच रहे हैं
कोरियों के नंगे बदन पर
सटाक-सटाक-सटाक

हाकिम-हुक्काम
राजधानी में हैं और
पिंजरों की आवाज
पहुँच रही है यथावत्
खट-खटा-खट-खट
कोरि अब भी
बुन रहे हैं कपड़े नंगे बदन

घोड़ानक्कास

घोड़ानक्कास से ज्यादा उदास है कोई जगह इस शहर में यहाँ
घोड़े इतने कम दिखने में कि मेरे बहुत
और इस तरह घोड़ानक्कास मरा

जाने किस खटके में तहमदबाज़ भोपाली किस-किसकी तलाश में गायब
मौजूद इक्का-दुक्का तो कुछ ऐसे बेंतबाजों की तरह डोलते-घिघियाते
ढूँढ़ते अपने पुराने कद्रदान
रिझाते याद दिलाते तांगे का नव्वाबी मजा

मुई राजधानी बाक़ायदा बड़ों के काबिल हुई
घोड़ानक्कास नये खटराग में जैसे भूल बैठा कव्वाली की नशीली रातें
भूला नमक में बोलती चाय का लुत्फ़
जैसे बीत गयी घोड़े के टापों की पकीली लय करीब

फर्राटे भरते ऑटो-मिनी बसों के बीच
गयीं वो मटरगश्तियाँ, वो फब्तियाँ गयीं
उठी पीतल की नक़्क़ाशीवाली वो दुकानें
पहियों को रंगरोशन करते वो लोग उठे
चली वो वार्निश की गन्ध चली और वो
हार्सपॉवर की इबारत कि जिसपे नाज हमें

नाल उतरी-सी खड़े हैं घोड़े
ऊँघते बचे-खुचे से तहमदबाज़

लो गया कैफ़ का मुहल्ला गया और
वो गुलियादाई की गली भी गयी

आखिरी साँसें हैं ये कल्चर की
अब वो अखलाक की दीवानगी कहाँ

नजर लग गयी इसे जमाने की
संभलकर चलना यहाँ सड़कों पर
ठहरकर हँसना यहां सड़कों पर
काली छायाएँ डोलती हैं यहाँ, नया भोपाल है यह भाई मियाँ!!

वह गंध

मुझे उस रात जिस जगह छोड़ा गया
अंधकार और सीलन से भरी थी
बचपन की एकाएक याद आई

वह गाय की सार थी
जहाँ घर से उजड़ने के बाद
हमने शुरू किया था जीवन

गोबर और गोमूत्र की गंध की बीच
ईंटों से बने चूल्हे पर
उबलती थी भगोनी में दाल
और उतरते थे ज्वार के टिक्कड़

भटे जो सबसे सस्ते थे
भूने जाते थे
और आलू-प्याज
सिलबट्टे में सस्ता मसाला पीसते हुए
लड़ा जाता था सार की गंध से
किसी भी वस्तु की मौलिक गंध को
अबेर पाना सबसे कठिन था

उन दिनों की रसोई में
जो कुछ भी पकता था

एक अलहदा स्वाद था
और रस परिपाक

उन दिनों की गंध स्मृति के सम्मुख
ये दिन बौने हैं
और अशक्त

गाय और उसकी बछिया के साथ
करते हुए भोजन
हमने पशु का नेह जाना
और वह गंध
जो मनुष्य से अधिक पवित्र थी

अनदिखा-अनखिला

बीड़ी के धुएँ की खिंची लकीर से
बना ऐसा यथार्थ चित्र
जैसे गुज़रा कोई तीव्रतम विमान
बनाता आकाश में स्थिर गति बिंब

इस घने वन में पत्तों पर
जूतों की चर्र-मर्र सुनके लगता
यकीनन कोई सर्वांग पुलकित राह पर

आँखें अब एकाग्र उसी ओर
यह अतिदूर का धुँधला दृश्य
किसी के चलने-होने का अहसास साफ़

अति दूर से इधर अति पास
लगभग ऐन सम्मुख
दराँती की अलोनी चमक सा रूप
पिंडलियों में उमगती मछलियाँ
धूसर धोती की लांग कसे
जैसे पाषाण देह में
वक्ष इतने स्थिर मानो
सतपुड़ा से भिड़ने को आतुर

बड़ा महादेव के रास्ते उतरती
सिर से लकड़ियों का बड़ा सा गट्ठर

कांधे सजी कुल्हाड़ी का गर्व
और आग सुहाग से सजी

शाम छह बजे तक पहुँचेगी रोज की तरह
जामई बाजार में वह नागफनी पुष्प
कुल आधा सेर आटा
नून, तेल और मिर्च भर के लिए
दिन भर पहाड़ हुई आज फिर

कहीं कोई आग तो नहीं

धू-धू करते दृश्य घेरते हैं सपनों को
हिया डांवाडोल कितना
धरती जली हुई मिट्टी की गंध से घबराई
दीवारें बची-खुची कालिख में डूबीं
टंगी जिनपे स्लेट पट्टियां
जले हुए आखरों के साथ
भस्म सारी किताबें और कापियाँ
हवा में तैरती सिसकियाँ

अवचेतन की किसी खाई में
झज्जर से उठती सवर्ण आग
फैलती देश की छाती पर तूफान-सी
बेलही, पारसबिगहा; लक्ष्मणपुर बाथे, बिहटा से
अब गोहाना तक और मैं अशक्त
यह धुक-धुकी कितनी भयावह

हर तरफ निशाने पर सिर्फ बाल्मीकि बस्तियाँ
मुंद चुकी पलकों के पीछे
बिलखाता कोई बच्चा है खोजता आँचल
आँसू की बिखरती कनियों के बीच
एक वह कली मुख सिहरता यादों में
उसके लिए अब एक झुलसा वीराना घोंसला
संशय के रोजम-रोज़ थपेड़ों के बीच

बमबारों का तमस विलास
और वह कानूनी सन्नाटा आसक्त
कि अँधर में डर गए शब्द
क्यों आखिर एक ही दिशा में खूनबारी
क्यों आखिर ईंट-पत्थर की एक सी अनगढ़ दुनिया
धूल में लोटती-बिखरती आह!

न्याय कितना बेबस, कितना समर्पित
यहाँ फाँस है मन में अटकी-चुभती बहोत
बस्तियों के ऐन सामने कितना सुरक्षित मंदिर
ईश्वर इतना निश्चित
कि धू-धू उठती आग लगे उसे आरती शायद

मेरी रातें मटियाली साँसों से भरी
कि इतनी सख्त दिक्कत
लहू के फानूस चमकते पूर्व दृश्यों में
बूट की कवायद के स्वर तेज
आते इस तरफ कि ऐसा भान
अगिन व्यथा के इतिहास का
एक बिंदु मैं
करता हूँ शब्दों के नाखून पैने

दिल्ली में बैठा हुआ सोचता हूँ मैं
पालाचौरई की उस बस्ती में कहीं
खाकी छायाओं का कोई
कोलाहल तो नहीं

कहीं कोई आग तो नहीं

कोई उत्तर नहीं

किस दु:ख में है कि क्रोध में वह
या कि समुद्र का वह कोई छिपा अल्सर
कि इस कदर ज्वालाएं फूटतीं बैर* द्वीप से
प्रशांत दीखने वाला वह
कितना बेचैन कि नृत्य करतीं पत्तियाँ
एकाएक धुएँ की गिरफ्त में
बालुई किनारे किस कदर लावे में दहकते

चश्मदीद हूँ मैं उन मनोरम दृश्यों का
कि जब पूर्णिमा का चाँद उतर आया था उस रोज
लहरों के नृत्य पर उसका ठुमकना
मानो एक अजाने छंद की सृष्टि
व्याकुल थी मेरी भाषा एक नए बिंब के लिए
पलकों में कितने सपने
कि बचा लूँ नीले-गुलाबी जीवाश्म
चट्टानों के बीच हरियाते तृण

और अब ये फूटती दरारें और उबलता गुस्सा
इस अचानक स्वभाव के व्यवहार की जद में
फड़फड़ाते परिंदों का शोर
पेड़ों पर शहद मक्खियों का अधूरा आनंद संगीत
मुरझाती हवा का दर्द

---

* अंडमान निकोबार का अकेला द्वीप जहाँ जीवंत ज्वालामुखी है।

चींटियों में मची भगदड़
मुमकिन है इस अचानक क्रोध की खबर हो उन्हें
और वे भाग रहे हों नए ठिकानों की खोज में

लेकिन इस सबके बावजूद
जीवन को समेटते ये सब आखिर उठाए
अपने घर-परिवार का दुःख
कितना और कब तक भागेंगे

कोई उत्तर नहीं है इसका मेरी कविता के पास

कब्रिस्तान

अव्यक्त आनंद था वहाँ
जब तक कि एक पेड़ था आँगन में
हवा थी
चिड़िया थीं
गिलहरी थी

बिक गया घर
पेड़ कटा पहले-पहल
और उसकी कब्र पर
बनी एक पाँच मंजिला इमारत

इस कब्रिस्तान से आती हैं
गिलहरियों और चिड़ियों की रोने की आवाजें

झुलसी चमड़ियाँ

पर्दा क्या है इन दिनों भ्रम और भय का व्यवसाय
एक चमकदार दरवाजा खुलता कुछ ऐसे
कि जैसे समर्थन में देश का बजट

आतीं अनेक छवियाँ जिनमें शमिल
भव्य कार्पोरेट सेक्टर
शेयर बाजार की इमारतों के दृश्य
हिंसा की प्रविधियाँ
खेलों के भव्य सर्कस के पीछे प्रायोजक
आस्था के पुरातन लिबासों में वस्तुओं पर छूट
लहलहाते फसलों की मोहक पुरानी क्लिपिंग्स
स्त्रियों की आजादी का मोहक संसार
बच्चों का आलोकित भविष्य
बूढ़ों से सहानुभूति के शब्द
आयकर में लुभावनी राहत
और बहुत कुछ कि चुनाव के ऐन सामने

इस महिमामंडित संचालित पर्दे के पीछे दूर कहीं
बैठा एक खल्वाट गरीब देशों के अर्थशास्त्र से खेलता
शामिल जिसमें पड़ोसी देश जिनके
लोग, पानी, धूप, हवा, वन और देश के
स्थानीय उत्पादों पर तेज निगाह

इतनी तेज कि उन आँखों से बचके निकल नहीं पाता कुछ भी
और धीरे-धीरे अस्तित्व का संकट गहरा
घबराके हटाता हूँ स्क्रीन के पीछे का सत्य खोजने
और सनाके में डूब जाता हूँ कि बैठा वहां जो
अमरीका का राष्ट्रपति है सूरज के गोले सा

मुझे याद हो जाती हैं अपनों की झुलसी चमड़ियाँ

धूप में

भाग रहा है समय
जीवन छूट रहा है

इस वृक्ष की शाखाएँ
टूट चुकी हैं

किस छाँह में बैठूँ
तनिक जी लूं

मेरी परछाई धूप में जल रही है

ततूरी

मई की ततूरी में
जल रहे हैं मजूरों के तलुए
कोलतार की सड़कों पर

कहीं नहीं है बादल
जल नहीं है
सिवाय आँखों के

आँखें धूप के हमले से पनियायी हुई हैं

नया बजट

जब मुदित हो रहे थे
नये बजट पर
लोग

एक भूखा कुत्ता
पागल की गोद में
रो रहा था

कुल

बार-बार कुचले जाने पर भी
खड़ी होकर

अपने होने की घोषणा करती है
जैसे दूब

हम उसी कुल के हैं

पढ़ाई

जबकि जीना हो चला है
कठिन

जीने की कला की पढ़ाई के लिए
सरकार को
खोलना चाहिए विद्यालय गाँव-गाँव में

मरने के लिए छोड़ देना
एक ख़तरनाक राजनीति है

अनुमति पत्र

जब फैलता है दंगा
कुछ ही के पास होते हैं
अनुमति पत्र

बाँटते हुए रोटी और कपड़े
वही बाँटते हैं हथियार

और निकल जाते हैं
उस मोहल्ले की तरफ

जहाँ अभी तक शान्ति है

गाने

फ़सलों की खुशी के
सारे गाने याद थे

इस साल फिर अकाल

अकाल के गाने थे
अकाल से लड़ने वाले गाने नहीं थे

अपमान

एक किसान और मर गया

इसे आत्महत्या कहना
अपमान होगा

मरने के समय
वह बैंक का दरवाज़ा खटखटा रहा था

शर्म की बात

यह साधारण घटना नहीं
शर्म की बात है—राम

कि एक स्त्री ने
प्रतिरोध में
धरती की शरण ली

चोर

यह दुनिया छोड़ दी हमने
चोरों के भरोसे

क्योंकि चोरों को एक होने में
समय नहीं लगता

और ईमानदार कभी
एक नहीं होते

ममता

सन्दूक में कर्ण को
बहाते समय
कुन्ती ने रख दिये
महँगे स्वर्ण आभूषण

रखना भूल गई ममता

मांगा उसने उसी का मूल्य
अपने पुत्रों के लिए

कर्ण के जीवन के लिए
उसने नहीं मांगा कुछ
कृष्ण से
अपने पुत्रों से

किताब

यह बुश के समय की किताब है

इसमें नहीं है
कोई दुक्ख
कोई अँधेरा

इसमें क्या है?
जानते हैं जो लोग

वे चमकदार अँधेरा चाहते हैं

हथियार

सच अप्रिय होता है

यह कोई नहीं जान पाएगा कि
मैं मरूंगा इसी के साथ

दोस्त नहीं समझ पाएंगे
कि मैं उनके हिस्से की लड़ाई
इसी हथियार से लड़ रहा हूँ

जब मैं लड़ाई के मैदान में हूँ
वे सच की झूठी लड़ाइयों में मुब्तला हैं

सजा

मैं जानता था
कितनी लफ्फाजी कर सकता हूँ मैं

मैंने नहीं चुना वह रास्ता

मीडिया प्रमुख होने के बाद
मैं नहीं था मीडिया में और
उन्होंने तस्लीम कर दिया इस मेरी कमज़ोरी

वे नहीं जानते थे कि
एक लेखक के लिए कितनी बड़ी हो सकती है
लफ्फाजी की सज़ा

मानचित्र

यह नार्थ ब्लाक है
यह साउथ
यहाँ बनते हैं
आने वाले समय के मानचित्र

हर नये मानचित्र में
अमरीका विशाल होता दीखता है

मुल्क

ख़बरें जो सुनी नहीं गई ध्यान से जैसे
किसान आत्महत्या कर रहे हैं
मजदूर आत्मदाह
कामकाजी औरतें
बलात्कार से खुद को बचा नहीं पा रहीं
भ्रष्टाचार की आग
गोल इमारत में भी

चैनल गुप्त रूप से
नये-नये ऑपरेशन में सक्रिय
और लेन-देन का
विलम्ब प्रसारण

मुल्क यक़ीनन बदल रहा है

ईश्वर

ईश्वर क्या है
एक दुकान

कितने धर्मों से
अपना सफल व्यवसाय करता है

ईश्वर का धन्धा कभी घाटे में नहीं चलता

अनश्वर

सब कुछ के बावजूद
भूलता जाता हूँ
इधर के स्वाद सुख

ढाबे से फेंकी गई
जली रोटियों की सुगन्ध
और कठिन दिनों में
उनका दिव्य स्वाद

इतना अधिक जीवित
जैसे अनश्वर

अक्का माँ

बहुत हो गया
अब न होगा
अक्का माँ
अब अड़ी हुई है

मार कछौटा
साठ बरस में
पके खेत में
खड़ी हुई है

सन्न पटेल
उसके सीने पर
लिये दराती
चढ़ी हुई है

अक्का माँ
अब अड़ी हुई है

सुराख के सामने

उसकी आँख में एक
अत्याधुनिक एक्सरे मशीन है

उसने देख लिया
उसके भीतर का सुराख
और अब वह
हर समय चौकस

एक छोटा सुराख
हिला सकता है
समूचे गृह नक्षत्रों का संतुलन

वह जवान होती बेटियों से
छुपाये यह सच
खड़ी है सुराख के सामने

मृत्यु का भय

बीमार होना किसी कमौआ[1] का
अदृश्य भय से घेर लेता है घर को
बीमारी हो अगर लाइलाज
लोग-बाग सोचने लगते हैं
हिस्से-बंटवारे की बात

एक औरत हारती नहीं भरोसा
अंतिम वस्तु
गिरवी रखी जाने के बाद भी
पल्लू में बांध के
चुपके से दो–एक गांठ
बांध लेती है मृत्यु का भय

1. कमौआ–कमाई करने वाला

कस्तूरी

उन दिनों कोई दस बरस बड़ी थी मुझसे वह
यानी कोई तीस-बत्तीस के उम्र अंदाज़न
अपने स्त्री होने की महक से
अजीब-सी चिढ़ थी उसे
दिहाड़ी पे काम मिलते ही 'कस्तूरी' छोड़ आई थी घर
कि शादी-ब्याह की बातों से उसे घृणा थी
हमारे घर के पिछवाड़े की एक खोली में
हमने देखा था उसका शुरू होता जीवन
एक औरत के जीवन-सा बहुत कम था वहाँ
न साज-सिंगार, न देह के प्रति स्त्री-सा मोह
रंगीन साड़ियों से जैसे उसका विरोध था
वह अमूमन काली, भूरी या धूसर साड़ी पहनती थी
बालों को जो काफी लम्बे और सुन्दर थे
बेमुरव्वत ढंग से काट के छोटे कर लिए थे उसने
जेवरात का उसे कोई शौक न था और
चूड़ियाँ वह पहनती न थी
लोग-बाग उसे इस रूप में देखके हैरान थे

आम औरतों की तरह उसने
तुलसी रोपने या कि पूजने का पुण्य नहीं कमाया
कि जब वह थकी-हारी गहरी नींद में थी
क्या हुआ बाद उसके सही-सही मालूम नहीं
सिवाय इसके कि वह पाई गई वह मृत

मर्दों ने अंतिम संस्कार की पहल की फटाफट
देख के जिसे आ डटीं कुछेक औरतें सामने
कोशिशें की गईं उनकी तरफ से देर तक बहोत
लेकिन न कोई पंचनामा, न ही पोस्टमार्टम
हो चुके थे सब लामबंद कोटवार से लेके दरोगा तक
बावजूद उनके विरोध, जला दी गई वह
जली नहीं लेकिन कि वह कस्तूरी थी
आग जो उसके भीतर थी
खिल रही अब भी गांव में
कि उसका एक बार होना
कितना बार-बार होना है इस धरती पे

---

1. अथाई–पंचायत

वजूद

मैं इतनी अधिक सुन्दर
मेरे पीछे इतने
मैं असहाय गंदगी के दलदल में

मैंने कुछ पाने की जगह
नफरत की अपने वजूद से और
जब-जब आत्महत्या की कोशिश
हर बार सामने एक बूढ़ी मां थी

और एक बहन
जो मुझसे अधिक सुन्दर थी

सस्ताई

पुट्ठों में हलचल
खुशी और ताकत
बेलौस ईमानदारी में उछलती रानें
आवाज में रक्त का कुँवारा ताप
सपनों की तिगुन में डूबी आंखें
हथेलियों पर उगते गुस्से के नर्म अंकुर
मरियल घोड़े को देखने से उपजी विरक्ति में
याद आई गांव की सस्ताई
डगाल-सी लचकती खुशी को थामे
एक फैसला किया उन्होंने तुरत-फुरत
अब एक बच्चा था
पीछे तेज-तेज पांव चलता हुआ

खोई आवाज़

इस सुदूर एकांत में
कोई नहीं पहचानता जहां
सिवाय मेरे आत्म के
जो बतिया रहा है सालों बाद

कितना अतीव सुख है
कि मैं सुन सकता हूँ
अपनी ही खोई आवाज़

आवाज की लरज को इस तरह
पढ़ लेना अरसे बाद
चमत्कार से कम नहीं

मैं लौट सकता हूँ
अपने पुराने बिंब की तरफ
कितना पाक यह

इधर जो हूँ मैं उसमें
कितनी बनावट
कितना झूठ
कितना बचा मैं
उम्र की सीढ़ियां चढ़ते

कितनी जमीन अपनी
ये रास्ते जो ऊपर की तरफ
कितने अजीब और रहस्यमय

इस जादू से बाहर आज मैं
उतना ही वैसा
कि जिसे करता हूँ मैं
सचमुच इश्क बहुत

मैं फिर बिल्कुल वैसा
चाहता हूँ होना
जिसे ढंक दिया गर्द ने
और अब हूँ मैं
सिर्फ धूल झाड़ता

ये धूल उतरती नहीं

कविता घर

क्या कहूँ कि आमदरफ्त है परछाइयां
फुसफसाहटों में हैं अखबार के सफे
स्नायुओं में दौड़ता है तेजाब
सब्जी काटने की छुरी तब्दील है तलवार में

गिरफ्तार हैं कविताओं के विषय
हकाला गया कविता में लिखते हुए प्रेम

शिनाख्त की जद में मुजरिम कानून की ओट में
खुले षड्यंत्र में मुब्तिला अन्वेषण तंत्र
भोजन से उठती गंध बदल गई इतनी
पाता खुद को जीवित मुर्दाघर में

चुकी दांतों की चमक
और दुखते हैं जबड़े
बहुत सारी हंसी आस-पास खो गई
दोस्त जो बहुत ज्यादा थे हिसाब में
एकाएक घट आ टिके अंगुलियों पर

कुछ ऐसे कि नफ़ा-नुकसान पर आ ठहरी आत्मा
जो दोस्त बचे-खुचे
उनकी शक्ल में परिवार सुकून की सांस में

मां के सीने से उतरने से रहा दूध
और वह कटोरा सूखे स्तनों से लगा
सौंपती है शक्ति घर छोड़ने के पहले
पत्नी करती है ताकीद कि याद रखना है किसे
बच्चे मुस्कुराने की कोशिश में
बढ़ाते ढाढस कि एकाएक बुजुर्ग हुए

चकमक भर चिंगारी है
और विश्वास की अंधी खोह
चलता हूँ रक्तस्नात चेहरा उठाये
आवाज़ें हैं पीछे और आगे रास्ता

अंधकार से घिरा कविताघर
ऋतु बसंत का सुप्रभात
छिपा उसमें कहीं स्व

मैं सूंघता हूँ
और दौड़ने लगता हूँ

गुरुदक्षिणा

एक लम्बी काम भरी नींद से मुक्त
कि अब पेंशन गुनते
संपूर्ण गुजरे हुए को सामने रख देखते
आरोपों की एक लम्बी सूची
हल्फिया बयानों का मजमून
और वे चूकें जिन्हें स्वीकारने में हिचक

वे सोचते हैं उस मेहनत के बारे में
जिसके बदले मिला इतना कम
कि हिसाब में नुकसान अधिक
गिरती रही कमाई की कीमत बेहिसाब

एक तरस थी जीवन को लेकर
मन डूबा रहा घृणा में
बच्चे पढ़ नहीं सके कि वह हाथ से बाहर
लड़कियों की तरफ से लापरवाह
कि ऐसा बेमन हुआ
स्त्रियां इतनी गैरमतलब रहीं घरों में
कि उनकी सोच पर कर्फ्यू

नीतियां इतनी कागज़ी कि जातिभेद में डूबी
सेहतमंद रहने के लिए घरेलू बज़ट नाकाफी
सोचते कभी जो इसके बारे में

घेर लिया शेयर बाजार की रक्ताल्पता ने
और संसद हुई अभिजनमुखी

पारंपरिक खाद्य वस्तुओं पर मार जमाने की
बाहर के अदृश्य हाथ सक्रिय इतने
कि भर उठे बाजार डिब्बा बंद संस्कृति से
जो थोड़ा खुला छूटा
ले आया असंख्य बीमारियाँ

जो कुछेक पेड़ थे और थोड़ी-सी ज़मीन
बेदख़ल किया उन लोगों ने
जिनकी जड़े थी सत्ता के तहखानों में
बेचेहरा माफिया कहा उन्हें सरकारों ने

न्यायालयों ने रची ऐसी विलंब की नीति
कि पीढ़ियां लड़ते हुए बूढ़ी हुई कि मृत
खुशहाल होने का भ्रम फैलाए
टी.वी. डूबा रहा एक अनंत राग में

भोजन का ऐश्वर्य था स्क्रीन पर
और गायब थी वस्तुएं गोदामों में
जहां वे रखीं गई
उन पर चौकसी पुलिस की दोहरी भूमिका में

बूढ़े अब पढ़ रहे थे
नौ सूत्री रणनीति
पाबंदी का एक मात्र अधिकार
वे खो चुके एक बार अंगूठा कटाकर

विश्व बैंक खुश था
और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष उत्फुल्ल

एक निरीह लोकतंत्र को वे
खरीद सकते थे कर्ज से
कि लगवा सकते थे अंगूठा
या फिर मांग सकते थे गुरुदक्षिणा
कि वे हुए आधुनिक द्रोणाचार्य

बूढ़े अब सचमुच हंस सकते थे कि
कुछ और ऐसा नहीं कि जिस पर हंसा जा सके

रोने की आवाज़ें

85 वर्ष की मां के हाथों तामीर हुए घरों में
जीवित मंझला भाई है 57 बरस का
और मैं जो 55 का
कहने को हम दो हैं जिन्हें दीवारें पुकारती हैं
अपनी कहानियों के साथ

जिनमें बाद की पीढ़ी लगभग जवान हुई
कुछ तो इतने जवान कि बाल-बच्चेदार
अच्छी-मंझोली नौकरियों में
और कहा जा सकता है कि खाते-पीते इतने
कि कुछेक पास गाड़ियां और अपने घर

और जिन घरों में वे बड़े हुए
उनकी दीवारें लगातार झरती-धसकती
ठीक उसी शिल्प में कि जैसे इधर के रिश्ते
जरूरी नहीं रहा उनके लिए अब किसी भी तरह की
जिम्मेदारियों और जरूरतों का अहसास
बूढ़ों के लिए जगह बमुश्क़िल बची
उनके इतिहास में किसी की दिलचस्पी नहीं
जो किया धरा वह त्याग के बाहर
बस कर्तव्य की परिभाषा में ऐसा अंटा
कि टूटती देह की बीमारियों से भी अब कोई सरोकार नहीं

सामूहिक दुःख सुखों से परे अब घरों में
आधुनिक दूरियों की गढ़ती गई इबारतें हैं
दो भाइयों की वैसी ही समझदारी और प्रेम
आखिर कब तक बचा पाएंगे धसकते घरों को

इस घर में बनती नई कहानियों से
आती है सिर्फ रोने की आवाज़ें

मृत्यु की शरण से

हम सब एक अर्से से इस कोशिश में
कि उस तकलीफ तक पहुंचे जो पहुंच से बाहर
एक मासूम बच्चे के दुखों में पहुंचना
जिस तरह मुश्किल, अशक्त ऐसे कुछ हम
उसे लगती है बेहद ठंड और
वह कंबल में दुबकी भरी गर्मियों के दिन

तकलीफ इससे एकदम उलट सर्दियों में
कि पीठ उसकी मानो लावा उगलती
हम हैं कि भागते-फिरते हैं
एक से दूसरे और तीसरे डॉक्टर की शरण
यहां तक वैद्य-हकीमों के पास भी
कोई माकूल इलाज मुमकिन हो
ऐसा अभी तक नहीं हुआ और परिणाम सिफर
वह उससे बोलती हरदम कि मिले
आखिरी पल उसके हाथ से गंगाजल
उसका कांधा लगे बिना उसकी मुक्ति कैसी?
कि जैसे देखती हो उसे अपने पति में

और वह हंस देता कि दादी को कुछ नहीं होगा
कि वो है अभी और रहना है उसे उसके बेटे को खिलाने
दिन में एक बार गुड़िया सा उठाके वह

जब भी घूमती है मजे में तो खिल उठती है फूलों सी
और फिर जीने लगती है

इस तरह रोज़ यह घर लौट आता है
मृत्यु की शरण से बाहर

निर्वासन

निर्वासन भोगते हम
याद करते हैं पूरी शिद्दत से
भूल गए जिन्हें
लिखते हैं लंबी-लंबी चिट्ठियों में
अनलिखी कथाएं

तीज-त्यौहारों को
मनाने लगते हैं फिर
कि उसमें बसी है स्मृतियाँ
छूट गए अपनों की

जिस फोन के बार-बार
बज उठने से
खीझ से भर उठते थे
करने लगते हैं इंतज़ार
उसके बजने का

निर्वासन
कारनामा है ऐसा कुछ
जिसमें लीलाधर मंडलोई
बन जाता है एक बार फिर
लीलाधर

कांटों के बीच

उदास रहने की कई वजहें थीं उसके पास
लेकिन उसे कभी उदास नहीं देखा
बचपन में खो गए माँ-पिता
अकेला हो गया एकदम
घबराया नहीं तिस पर मेहनत मजूरी से
खुद रचा अपना भाग्य
और लड़ने में कोई कोताही नहीं की

शादी की और दाखिल हुआ
एक नए जीवन में
और जिसे प्यार करता था बेहद
पाया उसे जूझते जीवन से
कि उसकी बीमारी का इलाज न था
जुटा रहा सेवा में जी भर
इतना अधिक कि पत्नी से ज्यादा
कि पत्नी को मलाल बहोत
एक दिन वह मुँहअंधेरे
छोड़ गई उसे
जो मुक्ति थी उसकी

मैं जब मिला उससे
वह चुप था और सामान्य
मानो जीत लिया हो दुख को

कहा उसने अब कभी-कभार ही
आता है वह शहर
वह जंगल का बाशिंदा है इन दिनों
और नदियों को बचाने की लड़ाई में
लगा हुआ है कुछ लोगों के साथ

वह बहुत गंभीर था अपने काम को लेकर
और उम्मीद से लबरेज
उसे देखकर लगता था
वह कोई और था

उसका सिर्फ चेहरा वही था
जिसे मैंने बचपन से देख रखा था
जिस पर कांटों के बीच
अब फूल उग आए थे सुन्दर

प्रायोजित माँ या दादी के तंत्र में

ग्रीष्म के ऐन बीच उजाड़ के मौसम में
जन्म लेता है एक आश्चर्य
ग़रीब-गुरबों का मददगार
वह उतर आता है जलजीरे और गन्ने के रस में
खुशबू का अप्रतिम संसार रचता

माँ इसे तुलसीकुल की औषधि मानती
आज भी गठिया से ग्रस्त वह
इसी की मालिश करती
सरदर्द में भी विश्वसनीय साथी
जब कभी होता कफेज बुखारी
इसी का रस कान में जाता और
कीड़े मृत्यु को प्राप्त

पुराने दिनों की बात है तब मैं कोई आठ-दस का
अंग्रेजी दवाइयों का जादुई शोर था
डाक्टर गांव से दूर
बस जामई तहसील में एक-दो
एक रोज सोते में काट गया चूहा
और चीखने लगा मैं बुरी तरह

मां ने बनाई उसकी पुल्टिस
और बाँध दी जख़्म के ऊपर

विषशमन के इस उपचार पर सब चकित
पीड़ा जाती रही और उसकी खुशबू
छा उठी चेतना पर कि इतनी कारगर

इधर वह उपस्थित आयुर्वेदिक दवाओं में
खांसी की गोलियां
मुखशोधक और इनहेलर
टूथपेस्ट और च्युइंगम
कुछेक मिष्ठान के भीतर भी
और वह पहचान लेती उसे
लगता उसे कि वह अब इस तरह
महंगा बहुत कि व्यापारियों के हाथ

पहले वह था छोटी-मोटी कंपनियों के साथ
कुछ यूनानी पद्धति की
और 'हिक़मत' तो बड़ी मशहूर उन दिनों
कोई मल्हम था जिसमें उसका कमाल
दो-एक तेज़ भी थे लेकिन महंगे बहोत

गरीब-गुरबा लेकिन खरीद न पाते
आते माँ के पास अमूमन
कोई डिग्री नहीं बस पुरखों का ज्ञान
उसे मालूम था कि उसकी आठ जातियाँ
और औषध योग उसका बीमारियों में
वह बताती कि तासीर गरम उसकी
रूक्ष और भारी
इसलिए इसका मिलाप अन्य चीजों से भी मीजान में
मिचली में कितनी बूंद
बेहोशी में कितनी
प्रसूति ज्वर में इसके शरबत की मात्रा
और अजीर्ण-अफारे
दोनो में-कितना और कब

माँ जानती थी और हम
न माँ को
और न ही उसे
दोनों छूट गए गाँव में
इधर परिवार पूरा रोगी
डाक्टर बहुत और एकदम काबिल
इतने सारे परीक्षण
इतना खर्च और कमाई बंधी
छूट जाता कुछ न कुछ इलाज में
समय की मारा-मारी और भाग-दौड़

मां थी तो चीज़ों की परख
घर में बीमारी को न घुसने देने के
कई मंत्र और सावधानियाँ
खाने में नवीनताएँ और स्वाद
बाजार की शरण से बहुत कुछ छुटकारा

इधर अब कुव्व्त से बाहर तो
माँ की याद बहोत
और इसी बहाने माँ के नुस्खे
उदाहरण के लिए इसी बारहमासी
और बहुवर्षायु पुदीने को लें
माँ के बाद इसे हमें चाहिए था जानना

जानता रहा उसे बनिया
और बहुराष्ट्रीय सेठ भी खूब
इधर माँ सरीखी एक औरत टी.वी. पर
बताती '100% आयुर्वेदिक नो साइड इफेक्ट्स'
और हम भूलते माँ को
दौड़ पड़ते बाज़ार के मोहक संसार में

इस तरह हम भूले कितना कुछ दुर्लभ
यहाँ तक दादी-नानी से लेके
माँ के होने का चिरसुख
और अब डर में आकंठ घिरे इतना कि
प्रायोजित माँ या फिर दादी के तंत्र में
खुशी-खुशी शमिल

जगह

अकेले पड़ते जाना एक ख़तरनाक प्रक्रिया है
एक अंधेरा आपको शुरू कर देता है लीलना
कि भरोसेमंद के साथ बने रहने के अहसास से ज़्यादा
कुछ भी नहीं अमर इस दुनिया में

हालांकि नहीं पाते बरहमेस उसे आप अपने पास
उसकी आवाज की अनुगूंज
रखती है आपको सदा ज़िंदादिल
एक दरवाज़े को खटखटाने का अधिकार
रखता है आश्वस्त मुसीबत में

इस हद तक कि आप जारी रख सकते हैं
एक ऐसी लड़ाई जिसे
रखना वैसे बहुत नामुमकिन
किसी अकल्पित क्षण से लड़ने के वास्ते
होती है आपके पास अक्षय ताकत

एक अदृश्य कोई रच रहा होता है
आपके भीतर
वो तमाम शब्द धारदार
जिनसे निकलता है विचार का ऐसा माद्दा
कि उसके आलोक वृत्त में
आप कर सकते हैं खुद को तैयार

मृत्यु से जीतना नहीं है उतना अहम
कि जितना करते रहना
दो--चार हाथ रोज अदेखी मुश्किलों से
और हंस लेना उन पर खुलेआम

मैं लड़ता हूँ हंसते हुए रोज
कि मेरे पास है वो ताकत
जिसे वह कलंदर दे गया था मुझे
यूँ ही बात-बात में

अब उसकी विरासत लिये मैं घूमता हूँ
मुझे लड़ना है उस वक्त तक
कि जब तक कोई और नहीं ले लेता
लड़ते हुए सैनिक की जगह

गणित

वो जो जानता है
नष्ट करने की कला
इत्मीनान में रहता है

अपनी गणित के मुताबिक
जंगल के पेड़ों की
करता है निशानदेही शांत चित्त से
दूरी और काल के हिसाब से

वह एक दिन उतार लेता है
समूची छाल
और लौट जाता है
अपने ठिकाने

एक दिन पेड़ उसकी
गणित में छटपटाके
सौंप देता है अपना
समूचा जीवन

सरकार नहीं जानती
अगला कौन सा पेड़
उसके निशाने पर है

जानते हैं वही
(महाश्वेता देवी के लिए)

हवा की
पेड़ की
पत्ती की भाषा
जानते हैं वही

झींगुर का
चूहों का
गिलहरियों का संगीत
ज़ानते हैं वही

हत्यारों का
अपराधियों का
निरपराध का मन
जानते हैं वही

काटी है जिन्होंने सजा

रास्ता

पूंजी तरल पदार्थ है
अवसर आते ही
बह जाएगी वह
जहां होगी अधिक

इसका कोई रास्ता
गरीबों की तरफ
नहीं आता

उसका जल

असंख्य प्यासों में से एक
थका-हारा श्लथ
चुल्लू भर जल
शीतल और कम से कम इतना साफ़
जैसे आत्मा

सूखते किनारों और
कचरे के दूहों के बीच से
बचता-बचाता
पूछता पता
इस चिलचिलाती धूप में

चलता हूँ कबाड़ से निकले
राकेटों, लांचरों, मिसाइलों के
खोकों को लांघता संभल के
ढूंढता हूँ नर्मदा से बिछुड़ा मैं
यमुना माई को इस दिल्ली में

लोग कहते हैं यहाँ मिलता है
गंगा का जल कि सरकार
यमुना से जैसे हारी बहुत

फिर भी कितना अधिक

जानबूझकर न मिलने के इस समय में
कोई नहीं मिलता जानबूझकर
फोन भी नहीं करते
लेकिन खबर पूरी रखते हैं
दुख भी आपका छिपा नहीं
यह और बात है कि छिपना उनका लाजिमी

नफरत मेरे स्वभाव में नहीं
मैं कहता हूँ बरहमेश
कि मालिक सबका भला करें
और मालिक मुझे छोड़कर
सबका भला करने निकल जाते हैं

कुछ और न होने पर
मैं प्रेम करता हूँ अनुपस्थित नातेदारों से
मैं कमाता हूँ चोरी-छिपे कविता में
और बना रहता हूँ संग-साथ किसी भीतरी कोने में

मेरा कमाया दूसरों से फिर भी
कितना अधिक बचा रहता है

सिर्फ एक बच्ची आती है

किशनगढ़ कहो
या पन्ना का अभयारण्य
वन तो वन है
जहाँ जीवित हैं
खूंखार आदिम सभ्यताएं

घोड़े पर सवार
बिरजिस और बूटों में
किसी पुराने राजा
या जमींदार की तरह
कोई व्यक्ति गुजरता है
अब भी शान से
और कुल्हाड़ों के वार
हो जाते हैं सहसा तेज

जिधर भी घूमता है-वो
पेड़ सलामी में गिरते लगते हैं
धड़ाधड़ और
हिरन के मांस की गन्ध
उसकी हवेली को लेती है घेर

आदमी और वन
जहाँ खड़े होते हैं
वहीं खड़े रहते हैं चुपचाप

सिर्फ एक बच्ची आती है
सघन वनों से
और वो अपनी पूरी
ताकत के साथ दौड़ती है
उस तरफ, जिधर से उठ रही
है मांस की गन्ध

आदमी और वन
फिर भी वहीं खड़े रहते हैं चुपचाप

एक फल के टूटकर गिरने का विरोध

नहीं उगतीं पत्तियाँ
चिड़ियाँ बसेरा नहीं करतीं
खोखल में छूट गए अधकुतरे फलों से नहीं उगता कोई और पौधा

एक अजगर लिपटा रहता है हरदम
लोग बरकाके रास्ता निकल जाते हैं दूर से
कुल्हाड़ी के कुछ गहरे निशान हैं हर तरफ
बहते रहते हैं पेड़ से आँसू या कि रक्त

नदी टकराती है भरसक जड़ों से सुबह-शाम
रात डूबती है आकंठ बेचैनी में
काले हो गए हैं वनरक्षकों के हाथ
कुछ हैं जो सिर्फ अंगुलियां मरोड़ते हैं
कुछ दिन भर के प्रदर्शन से ऊब
गोश्त काटते हैं कसाई से ज्यादा सुरुचिपूर्ण

शराब बहती है पास के गेस्ट हाउस में
दागता है कोई पियक्कड़ बेसबब गोली
नींद में डूबे पक्षी पंख फड़फड़ाते हैं
इन सबके विरुद्ध होती है कहीं मद्धिम आवाज
एक फल के टूटकर गिरने का विरोध
और चतुर्दिक पत्तियाँ सरसराती हैं

अंधेरा

टंके हुए हैं ढेर से सितारे
बुरके पर

बुरके में अंधेरा है

कासनी का फूल

बम-धमाकों के बीच
जब सब भाग रहे थे
श्रीनगर से अपने घर

छूट गया सब कुछ
बस चला आया मेरी स्मृति में
'कासनी का फूल'

बोलने में

गोला-बारी के बाद
सन्नाटा था
एक अधजले दरख्त पर
एक थी-'शीन चिरैया'

जिसके बोलने में
दरख़्त के रोने की
आवाज़ आ रही थी

उसे देखती रहेगी

कोलार के पानी को हाकिमों के बंगलों तक लाने अगर
न आया होता मज़दूरों का जत्था
देख न पाता कदाचित् उस सात्विक सौंदर्य को मैं

सघन दुधिया फुहारों में दौड़-दौड़ आती थी वह
यूकेलिप्टस के छायाविहीन पेड़ तले
तोतारंगी तंग धोती में गेहूँआ उसका रंग
फूट-फूट पड़ता था बारिश से पड़ती लकीरों के बीच

गजगमिनी सा पवित्र रूप लिये गोल मस्त स्तनों को
खोल देती थी एक झटके से बच्चे के सूखे अधरों पर
इस पवित्र देह अनावरण पर झुका मेरा साथ

मुझे याद हो आई बचपन की आदिम भूख
आत्मगौरव मे निष्फिकर वह
आते-जाते भद्र नागरिकों की नजरों से मुक्त
डूबी थी दुग्धपान कराते अतीव उल्लास में

धूल--धक्कड़ में लिथड़ा यह बच्चा जवान होगा और
एक दिन अपनी मां की तरह किसी और शहर में
भूलती जाती तमाम पीड़ाए देह की

घूमती माँ की खुरदरी हथेलियाँ वत्सल
रातभर बिना रुके

हमारे बालों में

सिरजातीं अनवरत
सोंधी परम सोंधी गन्ध
भीनी परम भीनी खुशबू मिट्टी की

मिट्टी पर सोते हम होते बरहमेस
एक निश्चिन्त और बेफिक्र नींद में
जागती रहती रात भर सिर्फ माँ

माँ की एक गहरी आराम भरी नींद के लिए
हम व्याकुल है अभी तक बचपन से।

रोज़नामचा

जो था कहाँ हूँ अपने वजूद से बाहर
गलियारे में आजाद घूमने से निष्कासित
जब्त हुआ परिचय पत्र
और मैं दोस्तों के बीच कहीं
अपनी छाया से निलंबित

यहाँ आवाजें मेरे वास्ते हाजिरी को
जानबूझकर अनुपस्थित जो उनके लिए मौन
सिर्फ हमारे असहाय ठिकाने गढ़ हुए साजिश के

चाय की गुमठियाँ
पान ठेले
यहां तक हाथ ठेले दौड़ाते लोगों के पीछे निगाहें
कोई रास्ता नहीं उन तक
जो बैठे हैं खुलेआम

रास्ता वही सुझाते हैं कि करो खलास सच को
हत्या के माकूल तरीके हैं किताबों में
निरपराध कोई भी हो धर दबोचो
खाली न रहे रोज़नामचा

जो देखते नहीं सिवाय सच के
खड़े होंगे कठघरे में

और साबित नहीं कर पाएंगे

काली पट्टी में बंद आंखें देखती हैं जो
शमिल नहीं उसमें सच की हत्या

ऐतबार

ये जिंदगी फक़त इक
बहीखाते की तरह लगती है
रोज़ जैसे नीलामघर से लौटता हूँ
चौतरफ अपने बस ये शर्मिंदगी
और यह भी क्या ख़ूब हासिल

क्या ग़ज़ब होंठ सिले हैं
कानों में रूई के फाहे
किनाराकशी में उम्दा महारत
खुशामदपसंदी का ये कैसा जुनून
कि ढूँढ़ता रीढ़ की हड्डी

ये कैसा ख़्वाब है कि
बेइंसाफ़ियों की तहरीर में डूबा
क्या एक मशीनी पुर्जा भर
कोई वास्ता
कोई दिली तअल्लुक नहीं

मैं बस इक बाजार में हूँ
और ख़रीदार कई
निकलना कितना मुश्किल
कि इतना सख्त इंतजाम
मैं खोलता हूँ आँखें और
निहत्था नहीं हूँ

हारा भी कल

मैं लड़ रहा हूँ
मेरा ऐतबार लेकिन कोई क्यूं करे?

फाँस

गले में ज़ंजीर है
भौंकता हूँ

यह जिल्लत की रोटी
फाँस सी चुभती है

अपराध

लोगों की किनाराकशी के बाद
मिलता रहा मैं
और करता रहा ज़रूरी मदद

जिन्हें मान लिया गया कातिल
बिना सबूत के
मैं उनके साथ बना रहा
उनके साथ होना
मेरा अपराधी होने के लिए काफ़ी था

गुम सिरा

माना कि समंदर काला है
और रात भी यह काली
माना कि खिजां का मंज़र है
और बैसाखियों पे खड़ी हैं उम्मीदें

माना कि तूफाँ नहीं रुकने का
और कश्तियाँ पुरानी बहोत

माना कि ये वक्त उलझा गोला ऊन का
खोलने में इसे ही खुलता कोई दरवाज़ा
तो खोलो इसे उठकर ठीक अभी...
ये देखो मिला इसका गुम सिरा...

अलीगढ़

ये बारहाँ मेरे सीने पे क्यूँ?
ये जिस्म बोझ जैसा है

यहाँ चेहरे नहीं
बस कठपुतलियाँ हैं
न होठों पे जुंबिश
न बांहों में ताक़त
फक़त एक धुंध है
और कोई आवाज़ नहीं

उठाये मजहबी निशान
हवस की आँधियों में
ये कौन हैं नकाब ओढ़े
चले आते हैं रौंदते

ये शोलों की लपक
ये चिंगारियां
ये जहर
बारहाँ मेरे सीने पर क्यूँ?

सूरजमुखी

सड़कें खामोश हैं
पेड़ चुप
सब्ज़ घास का पता नहीं

नदियाँ उदास
लू इतनी तेज़
कि हवा दहकती नसों में

चौतरफा उठते इस गुबार में
कहीं कोई छाया नहीं
लोग घरों में दुबके

बस एक पुदीने वाला
भरी धूप में
टाट की छाँव में
इस अजाब से बमुश्किल बचता

शाम की रोटी की आवाज देता
मैं उस छाँव की जन्नत में
एक गिलास पुदीने से
लड़ता हुआ अकेला कहां?

हम दोनों सूरज से मुखातिब
आज हम 'सूरजमुखी' हैं

नज़रों का कमाल

चीज़ें जैसी दीखती हैं रहती नहीं बरहमेस
देखा आपने जो उसकी सूरत थी
आपस की सुना-सुनी
लोगों में मेलजोल जैसे खत्म
चिरायंध में डूबा शहर
सूरज तक गर्दो-गुबार में गुम होता

वही एक कान फोड़ती आवाज सीना चाक करती
उठती जिस किधर से
भागती-दौड़ती टुकड़ियाँ
शववाहन, ऐम्बुलेंस और दमकल

हर तरफ एकाएक हाथ उगते और
विलाप करती धरती
आंखें अपनों को शक-शुबह से घूरतीं
दहशत इतनी कि पशु-पक्षी गायब

मुंबई के लिए टकटकी लगाये भले लोग
देर-सबेर सही-उठे
देखना शुरू किया उन्होंने करीने से
हर चीज पर नज़र दूरबीन सी साफ
हजारों-हजार नजरें और छोटा-सा शहर
उसका कद बहुत छोटा उनसे

हमख़्याल लोगों का ताल्लुक कुछ ऐसा बना
सड़कों पर निकल आये सब ज़िंदादिल

यह तो नज़रों का कमाल है बदला जा सकता है कुछ भी

इबादत

मैंने इबादत को मजहब से कभी नहीं जोड़ा
जैसे कि मेरी यह इबादत
हर गरीब को
वो सब मिले

जो उसका हक़ है

बाजार

हुस्न के बाज़ार में
गाये जाते हैं जो नग्मे

उनमें चिड़ियों के कराहने की
आवाज़ सुनाई देती है

शर्मनाक

मैं 1991 के अखबार में
पढ़ रहा हूँ यह ख़बर
एक एकड़ कपास की
लागत 2500 रुपये

और आज 2010 में
यह भयानक खबर
कि विदर्भ में
किसान आत्महत्या को मज़बूर
कि लागत
13,500 रुपये प्रति एकड़
और खेत उदास

सरकार बी.टी. कपास के समर्थन में
इस हद तक पागल
कि भूल गयी
अपने खेत
अपने किसान
यहां तक आत्महत्या के आँकड़े
जो किसी भी सरकार के वास्ते शर्मनाक

रंग

मेरी हंसी का रंग
स्याह है

देखा कभी आपने
वजीरे आज़म

रोना

वज़ू करते लोगों को देखकर
याद आती है गोलियाँ
मस्जिद एक इबादतगाह है
जानते हैं वे लोग

पिस्तौलों ने नहीं सुना
यतीमों का रोना

और रात में

घर के पिछवाड़े एक झोपड़ी
वहाँ एक परछाई है
जो रात गये रोती है

वह तो एक बेवा की झोपड़ी
जो तेज़-तर्रार बहोत
इतनी कि उसके मर्दानगी के किस्से कई

हर कोई उससे खौफ़जदा
उसकी तरफ देखना भी
तो बस चुराते हुए आंखें

रात के सहरा में फिर ये कौन
जो रोता है बेतरह
मैं सोचता हूँ तो जेहन में
झोपड़ी कौंध-कौंध जाती है

कहीं ये वही बेवा तो नहीं
जो दिन में कुछ और है
और रात में
ज़िंदगी के तमाम दुखों से
इस तरह टूट जाती है

लोहे का स्वाद

कुछ ऐसी वस्तुएँ जिनके होने से
आत्महत्या का अंदेशा था
बदन से उतार ली गई
बेल्ट और दाहिने हाथ की अँगूठी
पतलून की जेब में पड़े सिक्के
बायें हाथ की घड़ी कि उसमें खतरनाक समय था
जूते और यहाँ तक गले में लटकती पिता की चेन

अब ये एक हद तक निश्चित थे
ख़तरा उन्हें इरादों से था
जिनकी जब्ती का कोई तरीका ईजाद नहीं हुआ था
सपनों की तरफ से वे गाफ़िल थे
और इश्क के बारे में उन्हें कोई जानकारी न थी

घोड़े के लिए सरकारी लगाम थी
नाल कहीं लेकिन आत्मा में ठुकी थी
वह एक लोहे के स्वाद में जागती रात थी

लहू सर्द नहीं हुआ था
और वह सुन रहा था
पलकों के खुलने-झुकने की आवाजें
पीछे एक गवाह दरख़्त था
जिसकी पत्तियाँ सोई नहीं थी

एक चिड़िया गुज़रके अभी गई थी सीखचों से बाहर

और वह उसके परों से लिपटी हवा को
अपने फेफड़ों में भर रहा था
बाहर विधि पत्रों की दुर्गंध थी
बूट जिसे कुचलने में बेसुरे हो उठे थे
वह जो किताब में एक इंसान था
एक नए किरदार में न्याय की अधूरी पंक्तियाँ जोड़ रहा था

बाहर हँसी थी फरेबकारी की
और कोई उसकी किताबों के वरक चीथ रहा था
मरने की कई शैलियों के बारे में उसे जानकारी थी
लेकिन वह जीने के नए ढब में थे

इस जगह किसी मर्सिए की मनाही थी
वह शुक्रिया अदा कर रहा था चाँद का
जो रोशनदान से उतर उसके साथ गप्पगो था
बैठकर हँसते हुए उसने कहा
लिखो! न सही कविता-दुश्मन का नाम

दिल्ली

मैं दिल्ली में हूँ और मेरा मन कहीं
कहाँ हूँ मैं और ये जिन्दगी मेरी
कि जैसे रेशा-रेशा बिखरने को यहाँ

किसे कहूँ?
दोस्त वो कौन हो कि जो आधी रात को
तवज्जो दे कि मैं कितनी तकलीफ़ में सचमुच
ये कैसा डर मैं ऐसा सोचता हूँ
कि मेरे इस तरह बेवक्त फोन करने से
कहीं खत्म न हो बची-खुची दुआ-सलाम

फिर भी उठाता हूँ फोन कि इतना बेबस
और घूमाता हूँ जो भी नंबर
वह दिल्ली का नहीं होता
वह दिल्ली का क्यूँ नहीं होता?

चप्पलों का करुण संगीत

लोग यहाँ अब कम बोलते हैं
गुस्सा बीड़ी के तेज़ सुट्टे में
धीरे-धीरे जिबह होता हुआ
बोली-बानी से यहाँ तक
तंज वो गायब
कि जो इनकी पहचान इनकी
अजीब सी बुदबुदाहट
अजब है खुद से बोलना इनका
जैसे पराजितों का समय
जो कुछ बाकी तो बस
हड्डियों की कड़कड़ाहट

इस अभागी बस्ती में
कोई रोज़गार नहीं
हथियार उनके सब सुस्त-पस्त
इस वजह बढ़ते हुए
धब्बों की संख्या बहुत
और घिसटती चप्पलों का करुण संगीत

इस खामोशी की कथा में
कहते हैं शमिल है कथानक यह
कि फिर एक किसान ने
कोशिश की खुदकुशी की



लीलाधर मंडलोई

जन्म स्थान : ग्राम-गुढ़ी, जिला-छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश

कुछ प्रमुख कृतियाँ : घर-घर घूमा, रात-विरात, मगर एक आवाज, ये बदमस्ती तो होगी, देखा-अदेखा, लिखे में दुक्ख, एक बहुत कोमल तान, मनवा बेपरवाह, अंदमान-निकोबार की लोक कथाएँ, पहाड़ और परी का सपना (लोक कथाएँ), चाँद पर धब्बा, पेड़ बोलते हैं (बाल कहानी संग्रह)

विविध : चेखव की कथा पर फिल्म एवं प्रख्यात कथाकार ज्ञानरंजन पर वृत्तचित्र का निर्देशन।

पुरस्कार : 'घर-घर घूमा' कविता संग्रह पर मध्यप्रदेश साहित्य परिषद के रामविलास शर्मा सम्मान से पुरस्कृत, 'रात-विरात' कविता संग्रह मध्य प्रदेश साहित्य सम्मेलन के वागेश्वरी पुरस्कार तथा मध्य प्रदेश कला परिषद के रज़ा सम्मान से सम्मानित ।

संपर्क : 09818291188

ईमेल : leeladharmandloi@gmail.com

आवरण चित्रः कुंवर रवीन्द्र

ISBN : 978-93-82009-58-0
₹ 129





ज्योतिपर्व प्रकाशन
99, ज्ञान खंड–3, इंदिरापुरम, गाजियाबाद 201012